ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-2*March- 2018
Innovation The Research Concept

जालोर की लोक संस्कृति

सारांश

मनुष्य मात्र के समस्त पारंपरिक–विश्वासों, आचार–विचारों, परम्पराओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों को समझने के लिये लोक संस्कृति की नितान्त आवश्यकता रहती है और यही इसका समाजशास्त्रीय, भाषा–शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन मानव के लिये उपयोगी बनता है।लोक में बसने वाले जन, जन की भूमि व भौतिक जीवन, उस जन की संस्कृति, इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है और लोक संस्कृति का संबंध भी इन्हीं के साथ है। यहां के प्रमुख त्यौहारों में दीपावली, होली, रक्षा बंधन, गणगौर, आखातीज, सांवण की तीज, दशहरा, गोगा नवमीं, नवरात्रि इत्यादि है। जिले में इन सभी पर्वों के अवसर पर लोक–गीतों की मधुर स्वर लहरियां सर्वत्र सुनायी देती है।

वस्तुतः लोक संस्कृति लोक अथवा समाज का जितना प्रतिनिधित्व करती है, उतना नागरिक संस्कृति नही जालोर की लोक संस्कृति में जब हम यहाँ के लोक गीत, लोक कथा, कहावतें, मुहावरें, रीति–रिवाज जातीय गठन अनुष्ठान देवी देवता, शकुन, मान्यताएँ, विश्वास आदि तथ्यों को देखते हैं तो सारा राजस्थान भी एक सत्त्व की तरह आँखों में घूम जाता है।

जी एल जयपाल
प्रवक्ता,
हिन्दी विभाग,
श्री राजेन्द्र सूरि कुन्दन जैन
राजकीय महिला महाविद्यालय,
जालोर, राजस्थान

Add **AIM OF THE** Study of your paper

मुख्य शब्द : लोक, संस्कृति, त्यौहार, लोकगीत, लोकगाथा, बहरूपिये।

प्रस्तावना

लोक संस्कृति किसी प्रदेश विशेष की आत्मा का परिचायक है। यह वह दर्पण है, जिसमें उसका प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बित है तथा जिससे उस प्रदेश की संस्कृति व सभ्यता साकार हो उठती है। वैसे तो यह विषय सांस्कृतिक–नृतत्व–शास्त्र Cultural Enthropology से संबंधित है, परन्तु मनुष्य मात्र के समस्त पारंपरिक–विश्वासों, आचार–विचारों, परम्पराओं और कलात्मक अभिव्यक्तियों को समझने के लिये लोक संस्कृति की नितान्त आवश्यकता रहती है और यही इसका समाजशास्त्रीय, भाषा–शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक अनुशीलन मानव के लिये उपयोगी बनता है।लोक में बसने वाले जन, जन की भूमि व भौतिक जीवन, उस जन की संस्कृति, इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अंतर्भाव होता है और लोक संस्कृति का संबंध भी इन्हीं के साथ है। जालोर की लोक संस्कृति के परिचय का आरंभ यहाँ त्यौहारों से करते है। यहां के प्रमुख त्यौहारों में दीपावली, होली, रक्षा बंधन, गणगौर, आखातीज, सांवण की तीज, दशहरा, गोगा नवमीं, नवरात्रि इत्यादि है। जिले में इन सभी पर्वों के अवसर पर लोक–गीतों की मधुर स्वर लहरियां सर्वत्र सुनायी देती है। फाल्गुन महीने में होली के त्यौहार पर स्त्रियां अपने भाइयों को संबोधित करते हुए गाती है–

रंगीलो चंग वाजणू
वीरोजी मंडायो चंग वाजणू
म्हारो रे गर मढने लायो अे
रंगीलो चंग वाजणू।
चंग आंगळियां वाजे
चंग मूंदड़ियां वाजे
चंग पुणचे बळ वाजे अे
रंगीलो चंग वाजणू।
चंग बीकाणे वाजे
चंग जोधाणे वाजे
कोई वाजे वाजे चंग अजमेर अे
रंगीलो चंग वाजणू[1]

महिलाओं की आभूषण प्रियता लोक गीतों में रेखांकित होती है जो कि फाल्गुन के माह इस प्रकार के लोक गीतों की धूम रहती है–

म्हारा ओ सायबजी! म्हांने फागणियो मोलाय दो
ऐ फागणिया रो मोल चुकाओ रसिया, जद होळी,
वाह वाहजद होळी, खेलण घर आवो रसिया, जद होळी।।
म्हारा ओ सायबजी म्हांने तेवटियो घड़ाय दो
अे तेवटिया रो मोल चुकावो रसिया, जद होळी
वाह वाहजद होळी,खेलण घर आवो रसिया, जद होळी।।[2]

पुरुष भी फाल्गुन की मस्ती में स्त्रियों से पीछे नहीं है। गैरिये (पुरूष नृतक) होली के अवसर पर गीत गाते हुए चंग की थाप पर नाचते हैं जिसका रोचक वर्णन इस लोक गीत के अंश में दृष्टव्य है :–

जोरजी चंपावत घोड़ा बजारां में खड़िया रे
अे बजारां में खड़िया ने दरवाजा जड़िया रे
के झगड़ो आदरियो
हे झगडो आदरियो, जोरजी नारी रो जायोड़ो।[3]

समूचे राजस्थान में गणगौर की पूजा की जाती है। गणगौर (चैत्र महीने में) के अवसर पर कन्याएं आभूषणों से सुसज्जित होकर अच्छे वर प्राप्त करने की कामना करती हुई गीतों की स्वर लहरियाँ बिखेरती है। जिसका जीवंत वर्णन इस गीत में वर्णित है।

गवर गिणगोर माता, खोल किंवाड़ी
बारे ऊभी थारी पूजणवाळी।[4]

राजस्थान में श्रावणी तीज कन्याओं–महिलाओं के लिए सर्वप्रिय त्यौहार है तीज पर रंग–बिरंगे परिधान पहनती है। इस अवसर पर स्त्रियाँ पीहर जाने को उत्सुक रहती है किन्तु भाई के न पहुँचने पर चिंतित दिखाई देती है जिसका उल्लेख गीतों में हुआ है।

आयी आयी सावणिया री तीज
मा सा, पेहले रे सावण मत राखे धियाने सासरे।
मेल्यो मेल्यो अे मा वडोड़ो वीर
वचमें वीरा रो सासरो
रेहग्या रेहग्या ऐ आ, दिनड़ा दो च्यार,
जोड़े, अे मा, सावण ढळ ग्यो।[5]

बेटी की विदाई के अवसर पर परिवार में उत्साह के स्थान पर करूणा का माहौल हो जाता है महिलाएं करूणा भरे स्वरों में गाती है –

कोयलड़ी सिध चाल्या ?
बाईजी सिध चाल्या ?
म्हे थांने पूंछा म्हारा धीवड़ी
म्हे थांने पूंछा म्हारा बाईजी
इतरो बाबोसा रो लाड,
इतरो माताजी रो लाड,
छोड़'र सिध चाल्या ?[6]

बेटी के विदा होने पर स्त्रियाँ मन ही मन उत्तर खुद देती हुई गाती है–

म्हे तो रमती बाबोसा री पोळ
म्हे तो रमती दादोसा री पोळ
आयो परदेषी सूवटो,
गायड़मल ले चाल्यो।[7]

जालोर क्षेत्र तपस्वियों, विद्वानों एवं षूरवीरों की धरती रही है। यहां के जनमानस में आज भी इस दोहे की प्रासंगिकता है–

इळा न देणी आंपणी, हाळरियां हुलराय।
पूत सिखावे पालणे, मरण बड़ाई मांय।।

लोकगाथाएँ

राजस्थान के लोकजीवन का सहज निर्मल स्वरूप इन लोक कथाओं में अपनी संपूर्ण प्रखरता के साथ उजागर हुआ है। लोक में प्रचलित और परम्परा में चली आने वाली मूलतः मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ लोक कहानियाँ लोक गाथाएँ कहलाती है। लोककथाओं में लोकमानस की सब प्रकार की भावनाएँ तथा जीवन–दर्शन समाहित रहता है।

जालोर क्षेत्र भी लोककथाओं एवं गाथाओं की दृष्टि से समृद्ध रहा है। ऐसी ही गाथा का उल्लेख द्रष्टव्य है–

चन्दन और मलयागिरि

जालोर क्षेत्र में यह लोकगाथा अति प्रसिद्ध है। यहाँ का जनमानस इस लोकगाथा को अपने गीतों में संजोए हुए है। कथा लोहियाणागढ़ (अब यह नगर नष्ट हो चुका है।) के राजा चन्दन तथा उसकी रानी मलयागिरि एवं उनके पुत्र सायर एवं नीर से संबंधित है।

कथा के अनुसार राजा चन्दन प्रजापालक एवं सत्यवादी राजा था। भगवान ने उसकी कठोर परीक्षाएँ ली, किन्तु राजा चन्दन उन परीक्षाओं में राजा हरिशचन्द्र की भांति खरा उतरा।

एक बार भयानक दुर्भिक्ष पड़ा और प्रजा त्राहि–त्राहि करने लगी। एक दिन राज्य की सीमा पर बणजारें आकर ठहरे। उनके पास बहुत–सा धन था। राजा सागी नदी पार कर उन बणजारों के पास सहायता प्राप्त करने के लिए पहुँचा। बणजारे राजा को प्रजाहित के काम करने के लिए मुँह माँगा धन देने को तैयार हो गये, किन्तु उन्होंने एक षर्त राजा के सामने रखी कि राजा अपनी सुन्दर और कोमलांगी रानी बणजारों को सौंप दें।

राजा खिन्न मन से वापस लौट आया। जब रानी को ज्ञात हुआ कि राजा प्रजाहित हेतु धन याचना करने बणजारों के पास गया था, किन्तु मलयागिरि मांगने की षर्त के कारण वापिस लौट आया तो रानी स्वयं बणजारों के मुखिया के पास चली गयी और बहुत सारा धन राजा के पास भिजवा दिया।

जब रानी के पुत्रों सायर तथा नीर को सारी बात का पता चला तो वे भेष बदल कर बणजारों के डेरे में पहुंचे तथा रात्रि में सोते हुए बणजारों के स्वार्थी एवं स्त्री लोलुप मुखिया की मूंछ काटकर दोनों राजकुमारों ने अपनी माता को छुड़ा लिया तथा बणजारों की सारी सम्पति लूटकर राजा के पास लौट आये।

लोक–विश्वास

लोक विश्वास सहैतुक एवं युक्तियुक्त विश्वास है। लोक विश्वास व्यक्ति तथा समाज के बौद्धिक विकास के साथ सुदृढ़ हैं। प्राकृतिक आपदाओं, बीमारियों, महामारी, अकाल, दुर्घटना मृत्यु आदि से बचने के लिए लोक–विश्वास है कि देवी–देवताओं की पूजा करने, प्रसाद चढाने तथा जात देने (यात्रा करने) से विपत्तियों से बचा जा सकता है।

ये आपदाएँ देवी–देवताओं के नाराज होने से ही आती हैं। इस कारण ग्रामीण जनता अनेक स्थानीय लोक देवी–देवताओं तथा पितरों की पूजा करती है। जोगियों के चमत्कार, भविष्यवाणी, तंत्र–मंत्र, षकुन फल, स्वप्न फल,

जादू–टोना, भूतप्रेत, डाकण (डाकिनी), आदि में भी इनका अत्यधिक विष्वास है।

स्त्रियाँ, बूढ़े, बच्चे, शरीर से अषक्त, अनपढ़ तथा गरीब सभी लोग इनमें विष्वास रखते हैं। बच्चों की बीमारी के समय झाड़–फूंक एवम् जादू–टोना करवाते हैं। भोपे–भोपियों का भी ग्रामीण क्षेत्रों में खूब बोलबाला है।

ये अपने ष्षरीर को तेजी से हिलाते हुए देवी–देवता, पितर अथवा किसी आत्मा के अपने ष्षरीर में आने की घोषणा करते है तथा लोगों को कष्टों से मुक्ति के उपाय बताते हैं। अपने उन्माद में ये लोग कई बार हत्याएं तक कर बैठते हैं। ग्रहण के समय दान देना, पर्वों पर स्नान करना, पूर्वजों की आत्मा बुलाने के लिए रात्रि जागरण करने की प्रथा भी ग्रामीण क्षेत्रों में बहुतायत से प्रचलित हैं।

जालोर के लोक नृत्य

यहाँ के लोक नृत्य अपनी लय एवं विशेषताओं के कारण संपूर्ण राजस्थान में तो प्रसिद्ध है ही साथ ही ये देश विदेश में भी अपनी पहचान रखते है। यहां के प्रसिद्ध लोक नृत्य इस प्रकार है–

जालोर का ढोल नृत्य

यह नृत्य विवाह के अवसर पर माली, ढोली, सरगड़ा और भील जाति के लोग करते है। यह नृत्य केवल पुरुषों द्वारा किया जा सकता है। एक साथ चार या पांच ढोल बजते हैं। ढोल का मुखिया ढोल को थाकना ष्षैली में बजाना आरम्भ करता है, ज्योंही थाकना समाप्त होता है, अन्य नृतकों में से कोई अपने मुँह में तलवार लेकर, कोई हाथों में डंडे लेकर तो कोई भुजाओं में रूमाल लटकाता हुआ और ष्षेष केवल अंग संचालन करते हुए नृत्य आरम्भ करते हैं। सरगड़ा और ढोली पेषेवर लोक गायक और ढोल वादक है जो इस कला में बड़े पारंगत होते हैं। इसमें पेषेवर लोक नर्तकों के अतिरिक्त अन्य लोग भी दल में शामिल हो जाते हैं।

डांडिया नृत्य

इस नृत्य के अन्तर्गत लगभग बीस–पच्चीस पुरुषों की एक टोली दोनों हाथों में लंबी छड़ियाँ धारण करके वृत्ताकार नृत्य करती हैं। गैर, गीदड़ व डांडियाँ नृत्यों में काफी कुछ समानता हैं फिर भी पद संचालन, अंग, भंगिमा, ताल गीत, वेषभूषाओं आदि से तीनों नृत्यों को अलग–अलग पहचाना जा सकता है। होली के बाद यह नृत्य आरम्भ होता है तथा कई दिन तक चलता है। चौक के बीच में ष्षहनाई और नगाड़े वाले तथा गवैये बैठते हैं। इस अवसर पर सम्पूर्ण ग्रामीण जनजीवन एक ही स्थल पर एकत्रित होकर इस नृत्य का आनन्द उठाता हैं।

पुरुष गवैये **'लोक–ख्याल'** विलम्बित लय में गाते हैं। नर्तक बराबर की लय में डांडिया टकराते हुए वृत्त में आगे बढ़ते जाते हैं। इन नृत्यों के साथ गायक विभिन्न धमाल गीत अथवा नृत्योपयोगी होली गीत गाते रहते हैं। इन गीतों में अक्सर बड़ली के भैरूजी का गुणगान रहता है। नर्तक राजा, बनिया, साधु, ष्षिवजी, रामचन्द्र, कृष्ण, सिंधिन, सीता आदि के कपड़े पहनते और वैसा ही अलंकरण करते थे, किन्तु अब इनका प्रचलन लगभग समाप्त होता जा रहा है।

गैर नृत्य

इसमें भी पुरुष लम्बी छड़ियाँ लेकर गोल घेरे में नृत्य करते हैं। गैर करने वाले **'गेरिये'** कहलाते हैं। यह नृत्य होली के अगले दिन से आरम्भ होकर लगभग पन्द्रह दिन तक चलता रहता है। यह किसी भी खुले मैदान, चौक, चौराहे में किया जाता है। इस नृत्य में इस क्षेत्र की सभी जातियाँ भाग लेती हैं जैसे–माली, पुरोहित, चौधरी, राजपूत, मेघवाल आदि। इसमें अनेक पुरुष एक साथ वृत्ताकार नृत्य करते करते अलग–अलग प्रकार के मण्डल बनाते हैं। नृत्य के समय संगीत के लिए ढोल, बांकिया और थाली बजाये जाते हैं। वादक वृत्त के बीच में रहते हैं। गैर नृत्य में श्रृंगार रस और भक्ति रस से ओतप्रोत लोकगीत भी गाये जाते हैं।

नर्तक सफेद रंग का परिधान पहनते हैं। कन्धे से कमर तक चमड़े का पट्टा बांधते हैं जिसमें तलवार रखने की जगह होती है। इनमें साफे पर गोटा भी लगा हुआ होता है। संगीत के साथ बढती नृतकों की गति और भावमग्न मुख भंगिमा किसी भी दर्षक के हृदय पर अमिट छाप छोड़े बिना नहीं रहती। जिले के कई गैर नर्तक दल पूरे देष में तथा देष से बाहर विदेषों में अपने नृत्य प्रस्तुत कर ख्याति प्राप्त कर चुके हैं।

भाटा गैर

चामुण्डा माता मंदिर के सामने वाले मैदान में स्थित विषाल द्वार के पास होलिका दहन के अगले दिन भाटा गैर का आयोजन होता है। गांव के लोग लगभग 12 बजे दिन में चामुण्डा के दर्षन करते है तथा दो दलों में विभक्त होकर दरवाजे के दोनों तरफ खड़े हो जाते हैं। दरवाजे को कांटों की बाड़ से बन्द कर दिया जाता है तथा दरवाजों के दोनों तरफ छोटे–छोटे पत्थरों का ढेर लगा दिया जाता है।

रणभेरी का नगाड़ा बजते ही दोनों तरफ के दल पत्थरों व लाठियों से एक दूसरे पर वार करते है तथा कांटों की बाड़ तोड़कर दूसरी तरफ जाने का प्रयास किया जाता हैं। जिस दल का कोई सदस्य दूसरी तरफ जाने में सफल रहता है, वही दल जीता हुआ समझा जाता है।

इस युद्ध में लोग पत्थरों, लाठियों व कांटों की चोट से लहूलुहान हो जाते है किन्तु प्रतिवर्ष गैर खेलने आते हैं। जिस व्यक्ति का जन्म आहोर कस्बे में हुआ हो, केवल उसी को इसमें भाग लेने की अनुमति होती थी।

कहा जाता है कि जितनी देर तक गैर खेली जाती है उतनी देर तक चामुण्डा माता चील बनकर आकाष में मण्डराती रहती है। इन चीलों को देखकर गैर खेलने वाले उत्साह से भर जाते हैं।

ऐसी मान्यता है कि यदि कुबड़ा व्यक्ति यह गैर खेले तो उसका कुबड़ ठीक हो जाता है। यह गैर लगभग 200 वर्षों से खेली जाती है, किन्तु आज तक इसमें कोई भी व्यक्ति गंभीर रूप से घायल नहीं हुआ।

यह भी कहा जाता है कि रियासती गांव में गांव का जागीरदार इस कृत्रिम युद्ध में वीरता प्रदर्षित करने वाले युवकों में से सैनिकों का चयन करता था। वर्तमान में यह गैर सरकार द्वारा प्रतिबंधित कर दी गई है।

लूर

लूर नृत्य होली के एक महीने पहले आरम्भ हो जाता है और होलिका दहन तक चलता है। यह महिलाओं का नृत्य है। शाम को गृहकार्य निबटाकर महिलाएँ गाँव के चौक अथवा किसी सुविधाजनक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। पैरों की ताल और तालियों की लय के साथ यह सामूहिक नृत्य आरम्भ होता है। बड़ा घेरा बनाकर होने वाले इस नृत्य में कितनी भी महिलाएँ एक साथ भाग ले सकती हैं।

वैसे तो अलग–अलग जाति की महिलाएँ अपने–अपने मुहल्लों में अलग–अलग स्थान पर लूर करती है, किन्तु गाँव के आम चौक पर होने वाले नृत्य में किसी भी जाति की महिलाएँ भाग ले सकती हैं। इसमें कुँवारी कन्याओं से लेकर किसी भी उम्र की महिला नृत्य कर सकती है। यह नृत्य मरू संस्कृति का जीवन्त प्रतीक है।

स्वांग

अवसर विषेष पर स्वांग भरने वाले कलाकर मनोरंजन करने, परम्पराओं को जीवित रखने तथा आर्थिक उद्देष्यों की पूर्ति करने के लिए विविध वेषभूषा धारण कर बहुरूपिये बनते हैं। मदारी, भालू, कौआ, भांड, भांडी, भिखारी, सूअर, षंकर–पार्वती, वीर तेजाजी, हनुमान आदि के स्वांग धरे जाते हैं।

लोक में प्रचलित देवी–देवता

वे महापुरुष जिन्होंने अपने अलौकिक चमत्कारों से लोकहितकारी कार्य किये और आध्यात्मिक सिद्धियों से सम्पन्न इन महापुरुषों ने जनहित के लिए सर्वस्व न्यौछावर कर दिया इसलिए ये जन–जन की आस्था के केन्द्र बन गए। यहाँ के प्रमुख लोक देवी–देवताओं का परिचय इस प्रकार है –

मल्लिनाथ जी

मल्लिनाथजी का जन्म 1358 ईस्वी में मारवाड़ के राठौड़ राव सलखां के यहां हुआ। पिता की मृत्यु के बाद ये अपने चाचा कान्हड़दे के यहां महेवा में षासन प्रबन्ध देखने लगे। कालान्तर में उनके छोटे भाई त्रिभुवनसी को जालोर के पठान षासक की सहायता से पदच्युत कर 1374 ईस्वी में महेवा के स्वामी बन गये। 1378 ईस्वी में फिरोज तुगलक की तेरह दलों में बाँटकर आक्रमण करने वाली फौज को मल्लीनाथजी ने मार भगाया। इससे इनका मान बहुत अधिक बढ़ गया। इन्होंने अपने भतीजे चूण्डा को मण्डौर और नागोर जीतने में सहायता दी। सिवाना, खेड़ और ओसियां की जागीरें अपने संबंधियों को दी।

इनकी पत्नी रूपादे भगवान की बड़ी भक्त थी। उसने धारू मेघवाल नामक व्यक्ति को अपना गुरु बनाया था जो भगवान का बड़ा भक्त था। मल्लीनाथ जी को कुछ ईर्ष्यालु लोगों ने रानी के दुष्चरित्र होने की बात कही।

जाँच करने पर मल्लीनाथजी को सच्चाई का पता लगा और वह अपनी पत्नी को गुरु मानकर भगवान की भक्ति में रम गये। जालोर जिले की आहोर तहसील में डोडियाली गाँव के पास मल्लिनाथजी का प्रसिद्ध मन्दिर है। इनका एक बड़ा मन्दिर बाड़मेर जिले के तिलवाड़ा गाँव में हैं, जहां चैत्र मास में मेला लगता है। इन्हें केशर चढ़ता है।

जुंझारजी

जुंझारजी भी मामाजी की भाँति गायों, स्त्रियों, बच्चों तथा असहाय लोगों की रक्षा करते हुए अपने प्राण गवां देने वाले जुंझार वीर है, जिन्हें लोक आस्था ने ग्राम देवता का दर्जा देकर उनके थान (पूजा स्थल) स्थापित कर दिये। यहाँ भी ग्रामीण पूजा–अर्चना कर मनौतियाँ मानते हैं।

वीर बापजी

वीर बापजी के थान उज्जैनी वीर के थान भी कहलाते हैं। थांवला गांव में तथा जालोर नगर में तिलक द्वार के अन्दर भी उज्जैनी वीर का थान बना हुआ है। इनका पुजारी भोपा कहलाता है। भौपे को वीर बापजी का भाव आता है। वीर बापजी को धूंपाड़े चढ़ते हैं। ग्रामीण जनजीवन में ऐसी मान्यता है कि वीर बापजी कष्टों का हरण कर सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। इस क्षेत्र में वीर बापजी के अनेक स्थानों पर पूजा स्थल (थान) बने हुए है।

खेतलाजी

मारवाड़ में एक कहावत है कि आधे में देवी–देवता और आधे में खेतला। अर्थात् लोक देवताओं में खेतला का स्थान सबसे ऊपर है। वस्तुतः यह क्षेत्रपाल है और इसे मुख्य ग्राम देवता कहा जा सकता है। इन्हें जगदम्बा का पुत्र माना जाता है। विवाह से पूर्व गाँवों में कुँवारी कन्या को खेतले खाने पड़ते हैं। गेहूं की घूघरी, गुड़, आटे तथा घी का चूरमा एवम् नारियल का प्रसाद चढ़ाया जाता हैं।

खेतले खाने वाली लड़की अपनी सखियों और छोटे बच्चों के साथ चूनरी ओढ़कर खेतलाजी का प्रसाद खाती हैं। गाँवों के लोग अपने नवजात षिषुओं की पाँच साल तक चोटी रखते है जिसे ननिहाल में उतारा जाता हैं। इस अवसर पर माता अपने बच्चे को खेतलाजी के थान पर ले जाती है और बाल उतरवाती है। इसे खेतला उतारना कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि खेतला नहीं उतरवाने से बच्चों पर विपदा आ सकती है।

खवि

खवि का अर्थ होता है कबंध अर्थात सिर रहित धड़। भूत, प्रेत, यक्ष, गन्धर्व, और राक्षस से भी अधिक खतरनाक होता है–खवि। या तो यह लगता ही नहीं और यदि लग जाये तो फिर जिसे लगा है उसे मरना ही पड़ता है। यह आदमी और औरत दोनों को लगता है। ऐसी यहाँ के जन जनजीवन में धारणा प्रचलित है। जहाँ तक विदित होता है कि यह जनमानस की धारणा एक अंधविष्वास है।

खारे तथा मीठे मामा

खारे मामा को बकरे तथा मदिरा चढती है जबकि मीठे मामा को नारियल, बतासे, हलुआ आदि चढ़ता है। इन्हें अशुभ खद्यान नहीं चढ़ता। जबकि जुंझारजी को सब चढ़ता है। थांवला का मीठा मामा बहुत प्रसिद्ध है।

सती के थान

जो स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु होने पर उसके साथ सती हो गई उनके भी थान स्थान–स्थान पर स्थापित है। इनके थानों पर भी मान्यता बोली जाती है।

बायसां के रैंकले

सामूहिक जौहर के स्थान को जन मानस के बायासां का थान कहते हैं। इन थानों पर रखी हुई मूर्तियां बायसा की पुतली कहलाती हैं। इन्हें मदिरा भी चढ़ती है जिसे धार कहते हैं। इन थानों पर स्त्रियों के रोगों का निदान होता है।[8]

ऐसी मान्यता है कि आकाष मार्ग में रथ पर बैठकर यक्षणियां, योगिनियां तथा सतियां विचरण करती है जिन्हें बायसा के रैंकले कहते है। यदि यह रथ किसी भी मनुष्य के उपर से निकल जाये तो वह अष्टावक्र की तरह टेढ़ा–मेढ़ा हो जाता है। इस तरह की अंग विकृति होने पर बायसां के थान पर जाकर पूजा करते है और मनौती माँगते हैं।

भोपे–भोपियाँ

गोगाजी, मामाजी, जुंझार जी और बायसां के पुजारी तथा पुजारिन भोपे–भौपियाँ कहलाते हैं। ये पीढ़ी दर पीढ़ी होते हैं। इन्हें जब देवता का भाव आता है तो ये लोगों के प्रष्नों तथा समस्याओं का उत्तर देते हैं। जिन्हें पत्थर की लकीर के समान सत्य माना जाता है। वर्तमान में अधिकतर भोपे–भोपी ढोंगी हैं।

लोक कहावतें

लोक संस्कृति में कहावतें भी राजस्थानी लोक साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है। 'कहावत' षब्द के व्युत्पत्यार्थ को लेकर विद्वानों ने पृथक्–पृथक् मत प्रकट किये है। मैं यहाँ इसका सीधा–सा अर्थ ही ले रहा हूं। कहावत का अर्थ है – **'कही हुई बात।'** जीवन के किसी ऐसे अनुभव को जो किसी एक व्यक्ति का ही नहीं अपितु समाज के अधिकांश व्यक्ति जिसे प्रायः अनुभव करते हैं, और उसे जब चमत्कार पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है तो पूरा लोकमानस उसे सहसा स्वीकार कर लेता है। कालान्तर में वही चमत्कारपूर्ण वाक्यांश लोकजीवन में **'कहावत'** के रूप में प्रचलित हो जाता हैं।

पोंपाबाई का राज

ईस्वीं सन् 1325 से 1430 ईस्वी तक जालोर दुर्ग तथा आस–पास का क्षेत्र पुनः चौहानों के अधीन रहा। 1430 ई0 में चौहान राजा वीसलदेव को मण्डोर के राठौड़ राव चूण्डा ने मार डाला। वीसलदेव की रानी पोंपाबाई जालोर की गद्दी पर बैठी। जिसने वीरतापूर्वक राव चूण्डा की सेना को परास्त किया तथा चूण्डा जालोर को अपने राज्य में षामिल नहीं कर सका। इशारों पर नचाना चाहा, परन्तु स्वतंत्रता प्रिय रानी को यह स्वीकार नहीं हुआ। सेनापति ने कुद्ध होकर किला घेर लिया।

रानी को ईडर के राजा रणमल राठौड़ की षरण लेनी पड़ी। आज भी जालोर और उसके आस पास के क्षेत्र में उदाहरण स्वरूप कुशासन तथा अव्यवस्था की स्थिति के लिए 'पोंपाबाई का राज' कहकर उपहास उड़ाया जाता है। यह वस्तुतः राठौड़ों द्वारा अपनी पराजय से उत्पन्न खीज का परिचायक है।

रानी पोंपाबाई को अल्प समय में अपने राज्य में सुशासन तथा व्यवस्था स्थापित करने का अवसर भले ही नहीं मिला हो, किन्तु उस वीर महिला ने षक्तिशाली राठौड़ों को परास्त कर तथा खुर्रम का दबाव अस्वीकार कर अदम्य साहस और वीरता का परिचय दिया। इतिहास में उनका नाम आदर से लिया जाता है ।

राईयों का भाव रातों ही गया

यह कहावत जालोर क्षेत्र से जुड़ी हुई है। इसके सम्बन्ध में बहुचर्चित यह हैं कि जालोर दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन खिलजी को 12 वर्ष तड़फना पड़ा, लेकिन वह किले में प्रवेश नहीं कर सका। बीका दहिया ने गद्दारी कर बताया कि इस किले का एक भाग प्राकृतिक कठिनाइयों के कारण पत्थर लगाने से रह गया था, यदि उस स्थान का पता लगाया जाएं तो दुर्ग को तोड़कर उसमें आसानी से प्रवेश किया जा सकता है।

सुल्तान ने इसके लिए हजारो मण राईयों की खरीद आरम्भ की और किले के चारों ओर डलवा दी। इससे राईयों के भाव रातो–रात कई गुणा तक बढ़ गये। राईयों को पानी पिलाने से वह खोखली जगह पर 24 घण्टे में उग गई। इससे खोखली जगह का पता लग गया और किले पर सुल्तान विजय पाने में सफल हो गया। जब आमजन को राईयों की भारी खरीद के कारण भाव बढ़ने का समाचार मिला तो सभी अपने पास पड़ी राईयों को लेकर दूसरे दिन षहर की ओर दौडे, तब तक राईयों का कोई खरीददार नहीं रहा। इसलिए यह कहावत प्रचलित हो गई कि **'राईयों का भाव तो रातों ही गया।'**

जिहां पीडीइ विप्र नइ गाय, तिहां वाट नहीं आपइ राय

अर्थात जहां विप्र (ब्राह्मण) और गायों को यातनाएं दी जाती है वहाँ राजा लोग रास्ता नहीं देते हैं।

पुण्यइ अणयुगतूं संभवइ

अर्थात पुण्यों से असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

पांच लिंग जे पूजा करइ, गर्भवासि ते नवि अवतरइ

अर्थात जो शिव की पूजा करते हैं, वे दुबारा धरती पर जन्म नहीं लेते हैं।

जल विण षिण किम जीवीइ

अर्थात बिना जल के कोई कैसे जीवित रह सकता है।

थोडइ बलि मोटउं अभिमान

अर्थात थोड़े से बल पर ज्यादा गर्व नहीं करना चाहिए।

सूर ऊतंगइ दीवउ जिसउ

अर्थात जब सूर्य उदित हो जाता है तो एक दीपक की क्या उपयोगिता रह जाती है।

साम्हा गुरड भुयंगम किसउ

अर्थात एक गरूड़ को सर्प का क्या भय है ?

मरण न बीजी वार

अर्थात मौत मनुष्य को एक बार ही आती है।

जे समरंगणि साम्हा मरइ, तेह सुर सिद्ध वंदणा करई

अर्थात जो वीर युद्ध में वीरगति को प्राप्त करते है, वे सुर व सिद्धों से सम्मान पाते हैं।

पंष सहित बालइ निज अंग, जउ दीवइ जइ पडइ पतंग

अर्थात जब एक पतंगा लौ पर कूदता है तो अपनी सभी अंगों को जला देता है।

जनम मरणना अक्षर माहि, आधी पाछी घड़ी न थाइ

अर्थात जन्म मरण एक पल का भी विलम्ब नहीं करते हैं।

मूंग कोरी मांहि रहइ सदैव

अर्थात मूंगा हमेषा अपनी कौड़ी में रहता है।

पांचमि सिरजि छठि नवि हुसई

अर्थात जो पंचमी को होना है वह छठ को नहीं होता है।

पूठि न छांडइ प्रीति

अर्थात प्रेम का मार्ग बड़ा अनन्त है।

प्रीता परीक्षा एह, अंग बिहु जण उल्हसइ नरनारी नवनेह

अर्थात प्रेम की परीक्षा यही है कि नर–नारी दोनों के अंग उल्लास से भर जाते हैं।

जलहीणी मांछली जी, जीवई नहीं जग मांहि

अर्थात जल के बिना मछली एक पल भी जग में जीवित नहीं रहती है।

सज्जन जे अंगीकरई, वचन न चूकइ तोइ

अर्थात सज्जन लोग अपने प्रण को नहीं तोड़ते हैं।

जूनां धान हुई बलहीण

अर्थात पुराना अन्न शक्ति नहीं देता है।

अंग तणउ आदर किसउ, वीर न वंछई सोई

अर्थात जहां कीर्ति प्राप्त होती है, वहां वीर अपने प्राणों की परवाह नहीं करते हैं।

लोभ समउ नवि मइलउ कोई

अर्थात लोभी के समान कोई नीच और अधम नहीं हैं।

जे सकुलीणा साहसी ते मरणि न मूंकइ माण

अर्थात जो कुलीन एवं साहसी होते हैं वे मरने के बाद भी अपने प्रण को नहीं तोड़ते हैं।

लिष्यउं विधात्रा ने तिम टलइ

अर्थात जो विधाता ने लिख दिया है, वह टल नहीं सकता है।

लोक मुहावरे

साधारण भाषा में जब कोई कथन कहा जाता है तो वह अधिक प्रभावषाली नहीं होता है। किसी भी कथन को प्रभावषाली तरीके से कहने एवं उसमें चारूता एवं सजीवता लाने हेतु मुहावरों का प्रयोग किया जाता है।लोक मुहावरों में बड़ी शक्ति एवं अर्थवता होती हैं। मुहावरों के कारण अधिकाधिक चमत्कार एवं सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती हैं, जो कहे गये कथन को सार्थकता प्रदान करता है।

लसकर चालइ सूधी वाट

अर्थात् सीधे रास्ते जाना।

घडीय न लाई वार

अर्थात पलभर भी विलम्ब नहीं करना।

पड्या रिण माहि

अर्थात् युद्ध में कूद पड़ना।

तिहां करेस्यं चूनउ

अर्थात चूर–चूर करना।

डगमग डूंगर डोलइ

अर्थात पर्वतों का डगमगाना।

दाणा पांच लहइ नवि शावा

अर्थात खाने के लिए पांच दाने भी नहीं होना।

पवनस्यं तरइ

अर्थात वायु की तरह उड़ना।

आकाषि तणा गमन करषि

अर्थात आकाष में गमन करना।

कायर पडइ पराण

अर्थात डर से प्राण निकल जाना।

जीवउ कोडि वरीस–अर्थात कोटि वर्ष जीना।

मुलाणे लीधा घास–अर्थात मुंह में तिनका रखना (जीवन की भीख मांगना)।

लूण हराम

अर्थात नमक हरामी करना।

अंगोअंगि बिहुं

अर्थात हाथों हाथ करना।

पाटउ बांधी जउ सर नांषइ तुहि न चूकइ तीर

अर्थात आंख पर पट्‌टी बांधकर तीर चलाना।

तणसा काढइ डोला

अर्थात आंखे निकालना।

हिव लाजइ माहरूं मुहुसाल

अर्थात मातृत्व लज्जित होना।

हीयडां थ्यां पाषाण

अर्थात हृदय पत्थर का होना।

नीर तरया पाषाण

अर्थात पानी पर पत्थर तैराना।

निष्कर्ष

लोक संस्कृति का महत्व लोक जीवन में निर्विवाद है। इसका अपना स्वतंत्र प्रवाह होता है, जो निरन्तर प्रभावित हुआ करता है। वस्तुतः लोक संस्कृति लोक अथवा समाज का जितना प्रतिनिधित्व करती है, उतना नागरिक संस्कृति नही जालोर की लोक संस्कृति में जब हम यहाँ के लोक गीत, लोक कथा, कहावतें, मुहावरें, रीति–रिवाज जातीय गठन अनुष्ठान देवी देवता, शकुन, मान्यताएँ, विश्वास आदि तथ्यों को देखते हैं तो सारा राजस्थान भी एक सत्त्व की तरह आँखों में घूम जाता है। जालोर की लोक संस्कृति का यह रूप राजस्थान में ही नहीं अपितु संपूर्ण भारत के साथ–साथ विश्व में भी अपनी विषिष्ट पहचान रखता है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *द्रष्टव्य, रसीलेराज, वर्ष 6, अंक 7–8, 2011, पृ. 74*
2. *वही, पृ.75*
3. *वही, पृ.75*
4. *नीरज, जयसिंह, राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, पृ.120*
5. *वही, पृ. 120*
6. *द्रष्टव्य, रसीलेराज, पूर्वोक्त, पृ. 78*
7. *वही, पृ.78*
8. *राठौड, डॉ. विक्रमसिंह, राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, पृ.18*